आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 5/अंक 1/मार्च 2025

Received: 01/03/2025; Accepted: 11/03/2025; Published: 25/03/2025

विकलांगता के प्रति अभिभावकों का दृष्टिकोण

शबनम परवीन

शोधार्थी, हिंदी विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय

ई मेल आइडी : parveenshabnam26@gmail.com

मोबाईल नंबर: 87002217039

शबनम परवीन, **विकलांगता के प्रति अभिभावकों का दृष्टिकोण**, आखर हिंदी पत्रिका, खंड 5/अंक 1/मार्च 2025,(3- 7) https://doi.org/10.5281/zenodo.15077965

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

शोध सार : किसी विषय के विमर्श बनने की यात्रा बेहद गंभीर व शोचनीय होती है।'विमर्श' शब्द उन विषयों का प्रतीक है जो किसी न किसी स्तर पर उपेक्षित है। सामाजिक उपेक्षा का दंश झेलते हुए जब शोषण के विरुद्ध पुरजोर आवाज उठाई जाती है तब वह विमर्श का रूप लेती है। हिंदी साहित्य में स्त्री, दलित, आदिवासी,किन्नर आदि विमर्शों की तरह 'विकलांग विमर्श' भी अस्मिता की लड़ाई लड़ते हुए अपने अधिकारों की मांग कर रहा है।

विकलांगता को विमर्श बनाने के पीछे सकलांगजनों की संकीर्ण मानसिकता है। सकलांगजनों हेतु विकलांग व्यक्ति दया या उपेक्षा के पात्र से इतर कुछ नहीं है। विकलांगता स्त्री, दलित आदिवासी या किन्नर विमर्श से अलग है क्योंकि विकलांगता स्त्री, दलित आदि की तरह केवल जन्मजात न होकर दुर्घटनावश भी होती है, जहां स्त्री व अन्य शोषित वर्ग जाति की मोहर के साथ जन्म लेते हैं वहीं विकलांगता जीवन के किसी भी मोड़ पर दस्तक दे सकती है। विकलांग व्यक्ति का समाज में उतना ही महत्व है जितना किसी सकलांग व्यक्ति का है। विकलांगता के प्रति असामाजिक व अमानवीय रवैये के विरुद्ध आवाज़ उठाना वर्तमान समय की अनिवार्यता है। विकलांगता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अत्यंत आवश्यक है। इस संदर्भ में अभिभावकों का स्नेह व उनका सहयोग विकलांगों के मनोबल को बढ़ाने में आवश्यक भूमिका के रूप में उभरकर आता है।

बीज शब्द : विकलांगता, उपेक्षा, परिवार, समाज, अमानवीयता।

प्रस्तावना:विकलांगता के प्रति सामाजिक प्रतिक्रिया से पूर्व पारिवारिक स्थिति वविकलांगता के प्रति दृष्टिकोण पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। मनुष्य सर्वप्रथम परिवार का सदस्य होता है तत्पश्चात वह समाज का हिस्सा बनता है, इस संदर्भ में 'डॉ. विनय कुमार पाठक' लिखते हैं कि "विकास का पाठ इकाई से दहाई

अर्थात् व्यक्ति से समाज की ओर प्रस्थित होता है लेकिन निशक्तजनों के लिए यह नियम लागू नहीं होता। उस निशक्त को सशक्त बनाना उसमें आत्मविश्वास और आत् बल का वातावरण विनिर्मित कर आत्मनिर्भरता की ओर आकृष्ट करना समाज व परिवार का परम दायित्व है। इस दृष्टि से यह निष्कर्ष निःसृतहोता है कि समाज, सरकार और निशक्त में सतत् जागरूकता से ही इस समस्या का समाधान संभव है।"[1] विकलांग व्यक्ति का संपूर्ण जीवन उसकी पारिवारिक स्थिति पर निर्भर है। अभिभावकों का विकलांगता के प्रति दृष्टिकोण, आर्थिक स्थिति, परिवार की मानसिकता आदि ऐसे महत्वपूर्ण बिंदु है जो एक विकलांग के जीवन की दशा व दिशा तय करते हैं।

हिंदी साहित्य में कई रचनाकारों ने साहित्य की अलग-अलग विधाओं में विकलांग जीवन के यथार्थ को उकेरा है। यह यथार्थ कहीं मार्मिक तो कहीं भयावह वह तस्वीर बनाता है। इन रचनाकारों के विकलांग पात्र आत्मविश्वासी हैं तो शोषित भी है।'ममता कालिया' द्वारा रचित कहानी "मुन्नी" की विकलांग पात्र मुन्नी जहां आत्मविश्वासी है वही 'चंद्र किरण सोनेरैक्सा' की कहानी "खुदा की देन" की पात्रनज्जो उपेक्षा व दया की पात्र है। इन दोनों कहानी की विकलांग बालिकाएं एक ही आयु वर्ग की है, बावजूद इसके उनके जीवन में बहुत अंतर है। एक ओर जहां मुन्नी जन्म से ही कई बीमारियों से घिरे होने के कारण विकलांग जीवन जीने हेतु विवश हो गई वहीं दूसरी ओर नज्जो ने एक दुर्घटना में अपने दोनों पैर गंवा दिए। दोनों ही पात्र विकलांग है परंतु केवल अभिभावकों के दृष्टिकोण के अंतर से दोनों का जीवन एक दूसरे से विपरीत है।

मुन्नी की मां मुन्नी के प्रति पूर्ण रूपेण समर्पित है परंतु नज्जो की मां के लिए नज्जो एक बोझ है। यह भी ध्यातव्य हो कि माता-पिता के संदर्भ में आवश्यक नहीं कि दोनों का दृष्टिकोण विकलांगता के प्रति एक हो अपितु सामान्यतः यह देखा गया है की माता-पिता का दृष्टिकोण एक दूसरे से भिन्न होता है। मुन्नी कहानी के परिप्रेक्ष्य में इसे समझा जा सकता है। डॉक्टर के अनुसार जब यह नतीजा सामने आया कि मुन्नी अंधी, बहरी,गूंगी कुछ भी हो सकती है तब मुन्नी के पिता मुन्नी की मां से अक्सर कहते हैं कि "इससे तो अच्छा हो भगवान इसे मुक्ति दें, गूंगी बहरी लड़की लेकर मैं क्या करूंगा।"[2] यह कथन एक पिता का अपनी दो-तीन साल की रोग ग्रस्त बच्ची के लिए है जो बेहद निर्मम है। मुन्नी की मां की सोच मुन्नी के पिता के साथ-साथ पूरे परिवार से विपरीत है। मुन्नी की मां पूरे परिवार के विरुद्ध मुन्नी के बेहतर जीवन के लिए उसे नियमित रूप से डॉक्टर के पास ले जाया करती है जिस पर परिवार की प्रतिक्रिया इस प्रकार सामने आती है कि "यह चली है अपनी रूपमती का लाड़-लड़ाने।लड़का होता तो जाने क्या हाल करती।[3]" भारतीय समाज में किसी भी शोषित वर्ग के अंतर्गत स्त्री की स्थिति आज भी दोयम दर्जे पर है। मुन्नी की मां का आत्मविश्वास कहानी के अंत में मुन्नी के भीतर नजर आता है जब वह स्कूल में शिक्षकों द्वारा किए जा रहे भेदभावपूर्ण व्यवहार के विरुद्ध आवाज उठाती है। सही होने पर भी जब शिक्षिका उसे दूसरी लड़कियों से माफी मांगने के लिए कहती है तब मुन्नी कहती है कि "मदर आप मेरे परिवार को कोस रही हैं, इन लड़कियों के परिवारों को भी देखें। क्यों, क्या इनके मां-बाप यहीं सिखाते हैं कि दूसरी लड़कियों को अपने से नीचा समझो, उनकी हंसी उड़ाओ। मैं माफी नहीं मांगूंगी।"

मदर ने दांत पीसकर कहा,"चुप रहो बदतमीज लड़की। तुम्हें माफी मांगनी पड़ेगी वरना तुम इस स्कूल में नहीं रहोगी।"

मुन्नी ने कहा, "पहले यह लड़कियां मुझसे माफी मांगें, यह क्यों हंसी थी?

मदर गरजी, "माँगो, माफी माँगो।नहीं तो और पिटोगी।"

मुन्नी ने अपना बस्ता समेट लिया।

मुझे ऐसे स्कूल में पढ़ना भी नहीं है जहां इतनीबेइंसाफी हो।"

एक बागी की तरह मुन्नी क्लास से बाहर हो गई।"[4]

यह दृढ़ता उसे उसकी मां के स्नेह व सहयोग से प्राप्त हुई है। यदि मुन्नी की मां भी परिवार के अन्य सदस्यों की तरह उसे दुर्भाग्य मानकर नज्जो की मां की तरह घर या घर से बाहर किसी कोने में किसी अनावश्यक वस्तु की तरह फेंक देती तो मुन्नी में स्वाभिमान के स्थान पर नज्जो की टूटी हड्डियों जैसा क्षीण मनोबल होता।नज्जो आर्थिक संकट से जूझते परिवार का हिस्सा है जिसे माता-पिता सहित पूरे परिवार का कोई सहारा नहीं मिलता है।नज्जो की मां दिन में कई कई बार उसके जीवन को कोसते हुए कहती है कि"तीन बोतल खून का पैसा जमा हो जाता तो शायद दूसरे बड़े ऑपरेशन से यह लाठी के सहारे चलने काबिल हो जाती।अब तो जिंदगी भर के लिए यह हमारे सिर पर बोझ बन गई। इससे तो अल्लाह इसके पर्दे ढक ले।"[5] दोनों पैरों से अपाहिज होने के बाद नज्जोके हिस्से में एक चारपाई, एक सुराही और एक पिचका हुआ कटोरा आया।नज्जोकी चारपाई का घर के पास वाले नुक्कड़ से हटकर सड़क किनारे पहुंचने तक का सफ़र भी अमानवीय है "मैंने जुम्मन की बहू से पूछा,"बशीरे की माँ,क्या नज्जो..." और मेरा वाक्य अधूरा रह गया। पर जुम्मन की बहू शायद इतने से ही पूरे वाक्य की अभिव्यक्ति पा गई। उसने धीरे से कहा,"नहीं मास्टर बाबू। यह बात नहीं है" कमबख्तों को इतनी जल्दी अल्लाह भी नहीं बुलाता। बात यह है कि लाला आज सवेरे बिगड़ रहे थे कि उनकी नई हवेली के ठीक सामने खटोला पड़ा रहता है। बाबू, सुना है लाला अब म्युनिसिपालिटी के चेयरमैन हो गए हैं, तो भैया हमें डर लगा। नाजो का खटोला सड़क किनारे के नीम तले डाल दिया है।छाँह भी है और सरकारी जगह है, कोई मना भी ना करेगा"[6]नज्जोके जीवन की त्रासदी तो उसकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गई परंतु परिवार के लिए उसके जीवन की तरह उसकी मृत्यु भी नुकसानदेह रही।"मैंने सांत्वना देते हुए कहा,"नज्जो की अम्मी। उसे तकलीफ भी कम नहीं थी, अल्लाह ने उसे बुलाकर तुम लोगों को भी, एक तरह से नजात दे दी। खुदा उसकी रूह को जन्नत दे।"

"अरे बाबू, हमारे लिए तो वह खुदा की देन थी।मरने वाले दिन भी, कटोरे में बारह आने पड़े थे।हाय!नज्जो...मेरी बच्ची..." जुम्मन की बहू रो रही थी...।

मेरे मुँह में तो मानो ताला लग गया था।"[7]

इन दोनों कहानियों के विकलांग पात्रोंकेभविष्य का आधार विकलांगता के प्रति अभिभावकों का दृष्टिकोण ही है। यहां परिवार की आर्थिक स्थिति को भी नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि आर्थिक स्थिति की एक सामान्य व्यक्ति के जीवन में भी महत्वपूर्ण भूमिका है ऐसे में विकलांग व्यक्ति का पालन पोषण जाहिर है कि सामान्य से अधिक खर्चीला होता है।नज्जो आर्थिक विपन्नता से जूझते हुए परिवार का हिस्सा है परंतु मुन्नी की पारिवारिक स्थिति सामान्य है इसलिए इन दोनों की स्थिति में अंतर का यह भी एक मुख्य कारण है।अभिभावकों का दृष्टिकोण आर्थिक स्थिति पर भी निर्भर करता है।'संतोष श्रीवास्तव' की कहानी "अमीश के पापा" में अमीश के माता-पिता अपने जीवन का अंतिम क्षण तक अमीश की देखभाल में लगा देते हैं। पंतअपने अपाहिज बेटे के प्रति पूर्णतः समर्पण का भाव रखते हुए बोझिल मन से

अपने बेटे को 'अभ्यांश' नामक आश्रम में भेजने का निर्णय लेते हुए कहते हैं कि "क्या करें, मेरी तबीयत दिनों दिन बिगड़ती जा रही है। खाना पेट में टिकता नहीं। जीने की इच्छा मरती जा रही है। मेरे बाद अमीश लावारिस हो जाएगा। अपने सामने उसे सही जगह भेज दूं तो चैन से मरूं।"[8] जन्म से जिसे कभी अकेले नहीं छोड़ा उसे आज मजबूरी में आश्रम छोड़ने पर अमीश के पिताका दिल दहल रहा था। संतान चाहे विकलांग हो या सकलांग माता-पिता का सहयोग उसके जीवन हेतु आधारभूत आवश्यकता है। परंतु जब सकलांग अभिभावक किसी विकलांग को जन्म देते हैं तब वह संयम व आत्मविश्वास से काम लेने के स्थान पर निराश व कुंठित होकर संतान को कोसने लगते हैं। ऐसा नहीं की संतान के प्रति उनकी ममता उनके कठोर व निर्मम फैसले मेंबाधा नहीं बनती परंतु इस स्नेह को वह अनावश्यक मानकर सर्वश्रेष्ठ की श्रेणी में शामिल होने के लिए दौड़ पड़ते हैं।'अरुण यादव' की कहानी "मिस्टर परफेक्शनिस्ट" वास्तव में एक ऐसे पिता की कहानी है जिसे अपना पुत्र एक अभिशाप प्रतीत होता है। कहानी का शीर्षक पिता के व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है कि कैसे शेखर बाबू को जीवन में सब कुछ सुव्यवस्थित व संपूर्ण चाहिए। प्रस्तुत प्रसंग से शेखर बाबू की संपूर्णता के प्रति अति समझी जा सकती है।"टाइपिस्ट मिश्रा जी शेखर बाबू पर लाल छींटों की फुहार कुछ इस तरह करते हैं-"क्या शेखर बाबू आप भी कहाँ कॉमा, फुलस्टॉप में उलझे रहते हैं। आजकल कौन देखता है इतनी बारीकी से और किसेसही-सही जानकारी रहती है भाषा और व्याकरण की।"

शेखर बाबू को मिश्रा के इस मशविरे ऐसी कोई फर्क नहीं पड़ता। उन्हें तो अपनी राह ही चलना है, चाहे राह में वे अकेले क्यों न हों। शेखर बाबू के इसी स्वभाव के चलते ऑफिस में उनका कूटनाम 'मिस्टर परफेक्शनिस्ट' रख दिया गया है।[9] शेखर बाबू के परफेक्शन का यह सिलसिला यहीं तक सीमित नहीं है बल्कि ऑफिस के बाहर और घर के अंदर भी वह ऐसा ही व्यवहार करते हैं।"उनकी पत्नी संध्या बेचारी खीझकर रह जाती। झाड़ू-पोंछे से लेकर कपड़ों की धुलाई,इस्त्री करने जैसे मामूली कामों तक में शेखर बाबू पैनी नजर रखते हैं। संध्या को इस तरह के निहायत घरेलू कामों में शेखर का हस्तक्षेप बिल्कुल नहीं सुहाता। इस बात को लेकर उनके बीच नोकझोंक भी होती रहती है।"[10] इन सभी घटनाओं से यह स्पष्ट है कि शेखर बाबू के जीवन में संपूर्णता का कितना महत्व है। साथ ही यह संपूर्णता के प्रति एक प्रकार के पागलपन को भी दर्शाता है। ऐसे में जब उनका पुत्र अपंग पैदा होता है तब वह इस सीमा तक आक्रांत हो जाते हैं कि उसकी हत्या का इरादा कर बैठते हैं।"काफी सोचने –विचारने के बाद भी वे समझ नहीं पा रहे थे कि आखिर इस समस्या से छुटकारा कैसे हो। समस्या की तीव्रता ने शेखर बाबू को निष्ठुर बना दिया था। उनके ख्याल से संकट से मुक्ति का विकल्प यहीं है कि शिशु को किसी नदी, तालाब, कुँए, पोखर या निर्जन स्थान पर फेंक दिया जाय। लेकिन इस योजना में कमी यह थी कि दुनिया को क्या जवाब देंगे? लोग तो पूछेंगे कि बच्चा कहाँ गया। और फिर संध्या को भी तो बतलाना पड़ेगा।

इस विकल्प को त्याग कर वे किसी दूसरे प्लान पर काम करने लगे। क्यों न चुपके से बच्चे का गला दबा दिया जाय। संध्या के साथ किसी को भी पता नहीं चलेगा कि क्या हुआ। सब लोग इसे साधारण मृत्यु मान कर भूल जाएंगे, मामला खत्म।"[11] यह सोच हमारे समाज के खोखलेपन को दर्शाती है जिससे यह सिद्ध होता है कि संतान के प्रति प्रेम भाव से समाज में मान प्रतिष्ठा का महत्व अधिक है। शेखर अमानवीयता के अंतिम छोर तक पहुंच चुके हैं।"शेखर बाबू नवजातका गला दबाने के लिए आगे बढ़े। जैसे ही उन्होंने बच्चे को उठाने की कोशिश की, वे रुक गए। संध्या का हाथ बच्चे के पैर के ऊपर था। अगर जबरदस्ती करते हैं तो संध्या या बच्चा या दोनों ही जाग सकते हैं। शेखर बाबू थोड़ी देर के लिए रुक गए। सामने बहुत सुंदर दृश्य

था। माँ से सटा हुआ बच्चा निश्चिंत होकर सो रहा था। उसके चेहरे पर मुस्कुराहट नाच रही थी। नींद में डूबी संध्या के चेहरे से भी परम तृप्ति, संतुष्टि की आभा दमक रही थी। माँ-बेटे का यह अद्‌भुत दृश्य देखकर शेखर बाबू अवाक् हो गए। उन्हें लग रहा था मानो सारी कायनात उनके घर में आकर सृजन उत्सव मना रही है।है न बिल्कुल परफेक्ट सीन।"[12]भावनाओं का क्षणिक परिवर्तन उस बालक की जान बचाने का कारण बन जाता है। शेखर बाबू भले ही इस हत्या से स्वयं को रोक पाए परंतु यथार्थ इससे अधिक भयावह तब हो जाता है जब कचरे व नदी-नालों से बच्चों के शव प्राप्त होते हैं। यह ऐसे ही अभिभावकों के परफेक्ट होने के सबूत है जो पदछाप के रूप में पीछे छूट जाते हैं। प्रस्तुत कहानियों में अभिभावकों की मनः स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है जिससे अभिभावकों और विकलांग संतानों के बीच मौजूद उलझनों को जाना वह समझाजा सकता है।'मुन्नी' व'अमीश के पापा'कहानी के अभिभावक विकलांग संतानों के अभिभावकों हेतु मील का पत्थर है। हमारे देश में ऐसे कई विकलांग हुए जिन्होंने आत्मशक्ति से समाज में एक बेहतर मुकाम हासिल किया है। यदि एक सामान्य व्यक्ति को भी उपेक्षित किया जाएगा तो उसके आत्मविश्वास में कहीं ना कहीं नकारात्मकता आएगी ऐसे में किसी विकलांग व्यक्ति की मनोदशा को सरलता से आंका जा सकता है। विकलांग व्यक्ति के प्रति समाज का रवैया बहुत उदार या बहुत कठोर व उपेक्षित है। विकलांग व्यक्ति सामान्य हो सकता है इस दिशा में हमारे समाज की सोच अभी परिपक्व नहीं है।इस संदर्भ में 'मदन मोहन अग्रवाल' का यह कथन महत्वपूर्ण है, वह लिखते है कि "समाज में विकलांगों के प्रति उपेक्षा का भाव है इसलिए वे स्वयं भी हीनभावना के शिकार है। इतना बड़ा वर्ग समाज की मुख्य धारा से जुड़े, उनमें तथा उनके प्रति समाज में समानता का बोध-भाव बढ़े यह आवश्यक है।निःशक्तजनों में समाज के प्रति, समाज में निःशक्तजनों के प्रति चेतना जागृत करने का कार्य भी अत्यंत आवश्यक है।"[13]विकलांग यदि स्त्री है और आर्थिक विपन्नता से त्रस्त है तब जीवन कितना कष्ट में हो जाता है यह अनुमान लगाना कठिन है इस तरह का जीवन दोहरेशोषण का शिकार हो जाता है। अभिभावकों के दृष्टिकोण के सहारे विकलांग संतानों का जीवन कहीं संवर जाता है तो कहीं बिखर जाता है।किसी भी अभिभावक को यह अधिकार नहीं है कि वह अपनी संतान की हत्या करे अभिभावकों को चाहिए कि वह अपनी संतान के मन को समझे उसे तन की अपंगता से न जोड़े क्योंकि तन भले ही अपंग है परंतु मन अपंग नहीं है।

निष्कर्ष : अभिभावकों का विकलांगता को लेकर लज्जा, कुंठा व निराशा उनके जीवन को अंधकारमय बना देती है। समाज से पहले यदि परिवार का सहयोग व स्नेह इन्हें मिले तो यह आत्मविश्वासी बनते हैं परंतु अभिभावकों का उपेक्षित दृष्टिकोण ही उनके जीवन की त्रासदी का कारण बनता है। विकलांग संतानों के अभिभावकों को इन्हें किसी प्रतिस्पर्धा का हिस्सा न बनाते हुए उनकी प्रतिभा को पहचानना चाहिए।

संदर्भ सूची :

1. विकलांग विमर्श विविध सोपान, संपा- डॉ. आनंद कश्यप,पंकज बुक्स, नई दिल्ली, संस्करण- प्रथम, पृ- 08
2. मेरी प्रिय कहानियां, ममता कालिया, वाणी प्रकाशन, संस्करण- प्रथम, पृ-98
3. मेरी प्रिय कहानियां, ममता कालिया, वाणी प्रकाशन, संस्करण- प्रथम, पृ-99

4. मेरी प्रिय कहानियां, ममता कालिया, वाणी प्रकाशन, संस्करण- प्रथम, पृ-100

5. जीवन संग्राम के योद्धा, संपा-संध्या कुमारी, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, संस्करण- नईदिल्ली, पृ-7

6. जीवन संग्राम के योद्धा, संपा-संध्या कुमारी, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, संस्करण- नईदिल्ली, पृ-8

7. जीवन संग्राम के योद्धा, संपा-संध्या कुमारी, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, संस्करण- नईदिल्ली, पृ-8

8. मेरे हिस्से का आसमान, संपा- एस.जी.एस.सिसोदिया निसार, विकास प्रकाशन, कानपुर, सस्करण-प्रथम, पृ- 59

9. जीवन संग्राम के योद्धा, संपा-संध्या कुमारी, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, संस्करण- नईदिल्ली, पृ-59

10. जीवन संग्राम के योद्धा, संपा-संध्या कुमारी, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, संस्करण- नईदिल्ली, पृ-60

11. जीवन संग्राम के योद्धा, संपा-संध्या कुमारी, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, संस्करण- नईदिल्ली, पृ-60

12. विकलांग विमर्श विविध सोपान, संपा- डॉ. आनंद कश्यप, पंकज बुक्स, नई दिल्ली, संस्करण-प्रथम, पृ- 26

****